Chapter पन्द्रह

धेनुकासुर का वध

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि किस तरह बलराम तथा कृष्ण ने वृन्दावन की चरागाहों में गौवें चराते हुए धेनुकासुर का वध किया, किस तरह व्रजवासियों को ताल वृक्ष के फल खाने दिये तथा तरुण गाय-भैंसों आदि पशु-समूह को कालिय-विष से बचाया।

पौगण्डावस्था की लीलाएँ प्रकट करते-करते एक दिन राम (बलराम) तथा कृष्ण अपनी गौवें चराते चराते एक आकर्षक वन में प्रविष्ट हुए जिसमें एक स्वच्छ सरोवर था। वे अपने मित्रों के साथ खेलकूद करने लगे। थकान का बहाना करके बलदेव ने अपना सिर एक ग्वालबाल की गोद में रख दिया और कृष्ण अपने बड़े भाई की थकान दूर करने के लिए उनके पाँव दबाने लगे। तत्पश्चात् कृष्ण ने भी अपना सिर एक ग्वालबाल की गोद में रख दिया और एक अन्य ग्वालबाल उनका पाँव दबाने लगा। इस तरह कृष्ण, बलराम तथा उनके ग्वाल मित्रों ने विविध लीलाओं का रस लिया।

खेलते हुए श्रीदामा, सुबल, स्तोककृष्ण तथा अन्य ग्वालबालों ने राम तथा कृष्ण से उस दुष्ट तथा दुर्दम धेनुकासुर का बखान किया जिसने गधे का वेश धारण कर रखा था और जो गोवर्धन पर्वत के निकट के तालवन में रह रहा था। इस वन में अनेक प्रकार के मधुर फल थे किन्तु इस असुर के भय से कोई भी व्यक्ति इन फलों का आस्वादन करने का साहस नहीं जुटा पाया। इसलिए आवश्यक था कि

इस असुर तथा इसके संगियों का वध किया जाय। इस स्थिति को सुनकर राम तथा कृष्ण अपने संगियों की इच्छापूर्ति के लिए इस वन की ओर चल पड़े।

तालवन पहुँच कर ज्योंही बलराम ने तालवृक्षों को हिलाकर बहुत से फल गिराये तभी धेनुकासुर उन पर आक्रमण करने के लिए तेजी से दौड़ा। लेकिन बलराम ने उसकी पिछली टांगों को एक हाथ से दबोच लिया, उसे घुमाया और एक वृक्ष की चोटी पर फेंक दिया। इस तरह उसका वध कर दिया। तब धेनुकासुर के सभी साथी क्रुद्ध होकर आक्रमण करने के लिये झपटे किन्तु राम तथा कृष्ण ने एक एक करके उनको पकड़ कर घुमाने के बाद मार डाला। इस तरह सारा उत्पात समाप्त हो गया। जब कृष्ण तथा बलराम ग्वाल-समुदाय के बीच लौट कर आये तो यशोदा तथा रोहिणी ने उन्हें गोद में उठा लिया, उनके मुखड़े चूमे, अच्छा भोजन कराया और सुला दिया।

कुछ दिन बाद कृष्ण अपने मित्रों के साथ गौवें चराने कालिन्दी तट पर गये किन्तु बलराम साथ में न थे। गौवें तथा ग्वालबाल बहुत ही प्यासे थे अत: उन्होंने कालिन्दी का थोड़ा-सा जल पिया। किन्तु यह जल विष से कलुषित था इसलिए वे सब नदी के तट पर बेहोश हो गये। कृष्ण ने अपनी चितवन की दया-वृष्टि से उन्हें फिर से जीवित किया। होश में आने पर उन सबों ने इस महान् दया की भूरि भूरि प्रशंसा की।

श्रीशुक उवाच
ततश्च पौगण्डवय:श्रीतौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभि: समं पदै-
र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतु: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तत:—तब; च—तथा; पौगण्ड वय:—पौगण्ड अवस्था (६ से १० वर्ष तक); श्रितौ—प्राप्त करके; व्रजे—वृन्दावन में; बभूवतु:—बन गये; तौ—दोनों (राम तथा कृष्ण); पशु-पाल—ग्वालों के रूप में; सम्मतौ—नियुक्त; गा:—गौवें; चारयन्तौ—चराते हुए; सखिभि: समम्—अपने मित्रों के साथ साथ; पदै:—पाँवों के चिह्नों से; वृन्दावनम्—श्री वृन्दावन को; पुण्यम्—पावन; अतीव—अत्यन्त; चक्रतु:—उन्होंने बना दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : वृन्दावन में रहते हुए जब राम तथा कृष्ण ने पौगण्ड अवस्था (६-१० वर्ष) प्राप्त कर ली तो ग्वालों ने उन्हें गौवें चराने के कार्य की अनुमति प्रदान कर दी। इस तरह अपने मित्रों के साथ इन दोनों बालकों ने वृन्दावन को अपने चरणकमलों के चिन्हों से

अत्यन्त पावन बना दिया।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण अपने उन ग्वालबाल मित्रों को प्रोत्साहित करना चाहते थे जिन्हें पहले अघासुर ने निगल लिया था और बाद में ब्रह्माजी चुरा ले गये थे। फलत: भगवान् ने तय किया कि वे उन्हें तालवन ले जायेंगे जहाँ स्वादिष्ट पके हुए बहुत से फल थे। चूँकि अब कृष्ण का आध्यात्मिक शरीर, आयु तथा बल में कुछ बढ़ा हुआ दिखने लगा था अत: नन्द महाराज समेत वृन्दावन के गुरुजनों ने कृष्ण को बछड़े चराने वाले से बढ़ाकर नियमित गोपालक के पद पर प्रोन्नत करने का निश्चय किया। अब कृष्ण प्रौढ़ गौवों, साँड़ों तथा बैलों की रखवाली किया करते थे। इसके पूर्व नन्द महाराज स्नेहवश कृष्ण को नन्हा जानकर तथा गाय-बैलों की रखवाली करने में अक्षम मानते रहे। *पद्मपुराण* के कार्तिक माहात्म्य अनुभाग में कहा गया है :

शुक्लाष्टमी कार्त्तिक तु स्मृता गोपाष्टमी बुधै।

तद्दिनाद् वासुदेवोऽभूद् गोप: पूर्वं तु वत्सप: ॥

''विद्वान लोग कार्तिक मास की शुक्लाष्टमी को गोपाष्टमी के नाम से जानते हैं। उसी दिन से भगवान् वासुदेव गौवों की सेवा करने लगे जबकि इसके पूर्व वे बछड़े चराते थे।''

पदै शब्द से सूचित होता है कि भगवान् कृष्ण ने पृथ्वी को अपने चरणकमलों से पवित्र बनाया। वे न तो जूता पहनते थे, न कोई अन्य पदत्राण। अपितु वे नंगे पाँव जंगल में घूमते थे जिससे वृन्दावन की बालाओं को महान् चिन्ता रहती थी कि उनके कोमल चरणकमलों को कहीं चोट न लग जाय।

तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो
गोपैर्गृणद्भि: स्वयशो बलान्वित: ।
पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्
विहर्तुकाम: कुसुमाकरं वनम् ॥ २॥

शब्दार्थ

तत्—इस प्रकार; माधव:—श्री माधव; वेणुम्—अपनी वंशी; उदीरयन्—बजाते हुए; वृत:—घिरे हुए; गोपै:—ग्वालबालों से; गृणद्भि:—कीर्तन करते हुए; स्व-यश:—अपना यश; बल-अन्वित:—बलराम सहित; पशून्—पशुओं को; पुरस्कृत्य—आगे करके; पशव्यम्—गौवों के लिए पोषण से पूर्ण; आविशत्—प्रवेश किया; विहर्तु-काम:—विहार करने की इच्छा से; कुसुम-आकरम्—फूलों से परिपूर्ण; वनम्—वन में।

इस तरह अपनी लीलाओं का आनंद उठाने की इच्छा से अपनी वंशी बजाते हुए और अपने गुणगान कर रहे ग्वालबालों से घिरे हुए तथा बलदेव के साथ जाते हुए माधव ने गौवों को अपने

आगे कर लिया और वृन्दावन के जंगल में प्रवेश किया जो फूलों से लदा था और पशुओं के स्वास्थ्य-प्रद चारे से भरा पड़ा था।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने *माधव* शब्द के विविध अर्थों की व्याख्या की है, जो इस प्रकार है माधव सामान्यतया उस कृष्ण का सूचक है, जो ''लक्ष्मी के प्रेमी'' हैं। उक्त नाम यह भी बताता है कि वे कृष्ण मधु वंश में अवतरित हुए। चूँकि वसन्त ऋतु का भी नाम माधव है अतएव ज्योंही कृष्ण ने वृन्दावन जंगल में प्रवेश किया, तो उसमें स्वत: वसन्त-वैभव छा गया। वह फूलों से, शीतल मन्द वायु से तथा स्वर्गिक वातावरण से परिपूर्ण हो गया। कृष्ण का माधव नाम से विख्यात होने का यह भी कारण है कि वे माधुर्य प्रेम के स्वाद—मधु—में अपनी लीलाएँ करते हैं।

भगवान् कृष्ण श्रीवृन्दावन के जंगल में प्रवेश करते ही जोर से अपनी वंशी बजाते जिससे उनकी जन्मस्थली व्रजधाम के निवासियों को अचिन्त्य आनन्द प्राप्त होता था। जंगल में प्रवेश करने, वंशी बजाने आदि की ये सरल लीलाएँ वृन्दावन धाम में नित्य ही सम्पन्न होती थीं।

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं
महन्मन:प्रख्यपय:सरस्वता ।
वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना
निरीक्ष्य रन्तुं भगवान्मनो दधे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस (वन); मञ्जु—सुहावनी; घोष—ध्वनि; अलि—भौंरे; मृग—पशु; द्विज—तथा पक्षी; आकुलम्—पूर्ण; महत्—महात्माओं के; मन:—मन; प्रख्य—सदृशता रखने वाले; पय:—जिसका जल; सरस्वता—सरोवर समेत; वातेन—हवा से; जुष्टम्—सेवित; शत-पत्र—सौ पंखड़ियों वाले कमल की; गन्धिना—सुगन्धि से; निरीक्ष्य—देखकर; रन्तुम्—आनन्द लूटने के लिए; भगवान्—भगवान् ने; मन:—अपना मन; दधे—फेरा।

भगवान् ने उस जंगल पर दृष्टि दौड़ाई जो भौंरों, पशुओं तथा पक्षियों की मनोहर गुंजार से गूँजायमान हो रहा था। इसकी शोभा महात्माओं के मन के समान स्वच्छ जल वाले सरोवर से तथा सौ पंखड़ियों वाले कमलों की सुगन्धि ले जाने वाली मन्द वायु से भी बढ़कर थी। यह सब देखकर भगवान् कृष्ण ने इस पवित्र वातावरण का आनन्द लेने का निश्चय किया।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने देखा कि वृन्दावन जंगल पाँचों इन्द्रियों को आनन्द प्रदान कर रहा था। भौंरे, पक्षी तथा पशु मनोहर ध्वनि कर रहे थे, जो कानों को मधुर लग रही थी। वायु पारदर्शी सरोवर की नमी लेकर जंगल में बह रही थी और भगवान् की सच्ची सेवा कर रही थी जिससे स्पर्शेन्द्रिय को

सुख मिल रहा था। वायु की मधुरता से स्वाद की भी अनुभूति हो रही थी और कमल के फूलों की सुगन्ध नथुनों को आनन्द प्रदान कर रही थी। सम्पूर्ण जंगल में स्वर्गीय सौन्दर्य छाया था जिससे नेत्रों को आध्यात्मिक आनन्द मिल रहा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक के महत्त्व की व्याख्या इस रूप में की है।

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया
फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा
स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह; तत्र तत्र—चारों ओर; अरुण—लाल-लाल; पल्लव—कलियों के; श्रीया—सौन्दर्य से; फल—उनके फलों; प्रसून—तथा फूलों के; उरु-भरेण—भारी बोझ से; पादयोः—उनके दोनों चरणों को; स्पृशत्—छूते हुए; शिखान्—उनकी डालों के सिरे; वीक्ष्य—देखकर; वनस्पतीन्—शानदार वृक्षों को; मुदा—हर्ष से; स्मयन्—हँसते हुए; इव—प्रायः; आह—बोले; अग्र-जम्—अपने बड़े भाई बलराम से; आदि-पूरुषः—आदि परमेश्वर।

आदि परमेश्वर ने देखा कि शानदार वृक्ष अपनी सुन्दर लाल-लाल कलियों तथा फलों और फूलों के भार से लदकर अपनी शाखाओं के सिरों से उनके चरणों को स्पर्श करने के लिए झुक रहे हैं। तब मन्द हास करते हुए वे अपने बड़े भाई से बोले।

तात्पर्य : *मुदा स्मयन् इव शब्द* इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण को परिहास सूझ रहा था। वे जानते थे कि वृक्ष उनकी पूजा करने के लिए सचमुच नीचे झुक रहे हैं किन्तु जैसाकि अगले श्लोक से प्रकट है वे मित्र की तरह परिहास करते हुए इसका श्रेय अपने बड़े भाई बलराम को देते हैं।

श्रीभगवानुवाच
अहो अमी देववरामरार्चितं
पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-
स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा; अहो—ओह; अमी—ये; देव-वर—देवताओं में श्रेष्ठ (श्री बलराम); अमर—अमर देवताओं द्वारा; अर्चितम्—पूजित; पाद-अम्बुजम्—चरणकमलों पर; ते—आपके; सुमनः—फूल; फल—तथा फल की; अर्हणम्—भेंट; नमन्ति—वे नमन कर रहे हैं; उपादाय—प्रस्तुत करते हुए; शिखाभिः—अपने शिरों से; आत्मनः—उनका अपना; तमः—अज्ञान का अंधकार; अपहत्यै—दूर करने के लिए; तरु-जन्म—वृक्षों के रूप में उनका जन्म; यत्—जिससे अज्ञान; कृतम्—उत्पन्न हुआ।

भगवान् ने कहा : हे देवश्रेष्ठ, देखें न, ये वृक्ष जो अमर देवताओं द्वारा पूज्य हैं आपके

चरणकमलों पर किस तरह अपना सिर झुका रहे हैं। ये वृक्ष उस गहन अज्ञान को दूर करने के लिए आपको अपने फल तथा फूल अर्पित कर रहे हैं जिसके कारण उन्हें वृक्षों का जन्म धारण करना पड़ा है।

तात्पर्य : वृन्दावन के वृक्ष यह सोच रहे थे कि पूर्व अपराधों के कारण ही उन्हें अब वृक्ष के रूप में जन्म लेना पड़ा है और अचर होने के कारण वे कृष्ण द्वारा पूरे वृन्दावन क्षेत्र में घूमने में उनका साथ नहीं दे पा रहे थे। दरअसल, वृन्दावन के वृक्ष, गौएँ तथा सभी प्राणी महान् आत्माएँ थीं जिन्हें भगवान् का सान्निध्य प्राप्त था। किन्तु वियोग भाव के कारण वृक्ष अपने को अज्ञान-ग्रस्त मानकर कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों में नतमस्तक होकर अपने को पवित्र बनाने का प्रयास कर रहे थे। भगवान् कृष्ण उनके मनोभावों को समझ कर उन पर स्नेह-दृष्टि डालते हुए अपने बड़े भाई बलराम से उन सबकी भक्ति की प्रशंसा करने लगे।

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपथं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एते—ये; अलिनः—भौंरे; तव—आपका; यशः—कीर्ति; अखिल-लोक—समस्त जगतों के लिए; तीर्थम्—तीर्थस्थान; गायन्तः—गुणगान कर रहे हैं; आदि-पुरुष—हे आदि भगवान्; अनुपथम्—मार्ग में आपका अनुसरण करते हुए; भजन्ते—पूजा कर रहे हैं; प्रायः—अधिकांशतः; अमी—ये; मुनि-गणाः—मुनि जन; भवदीय—आपके भक्तों में; मुख्याः—अतीव घनिष्ठ; गूढम्—छिपाया हुआ; वने—जंगल में; अपि—यद्यपि; न जहति—नहीं छोड़ते; अनघ—हे निष्पाप; आत्म-दैवम्—अपने आराध्य देव को।

हे आदिपुरुष, ये भौंरे अवश्य ही महान् मुनि तथा आपके परम सिद्ध भक्त होंगे क्योंकि ये मार्ग में आपका अनुसरण करते हुए आपकी पूजा कर रहे हैं और आपके यश का कीर्तन कर रहे हैं, जो सम्पूर्ण जगत के लिए स्वयं तीर्थस्थल हैं। यद्यपि आपने इस जंगल में अपना वेश बदल रखा है किन्तु हे अनघ, वे अपने आराध्यदेव, आपको छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *गूढम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। यह इंगित करता है कि यद्यपि कृष्ण या बलराम के रूप में भगवान् इस भौतिक जगत में सामान्य व्यक्ति जैसे लगते हैं किन्तु बड़े-बड़े ऋषि मुनि भगवान् को परब्रह्म के रूप में हमेशा पहचान लेते हैं। ईश्वर के सारे दिव्य स्वरूप सच्चिदानन्दमय हैं—

हमारे भौतिक शरीरों के सर्वथा विपरीत जो कि अस्थायी तथा दुख एवं अज्ञान से पूर्ण होते हैं।

तीर्थ शब्द का एक अर्थ है ''भौतिक संसार पार करने का साधन।'' भगवान् के यश के श्रवण या कीर्तन मात्र से मनुष्य तुरन्त ही भव-सागर के परे आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है। इसीलिए भगवान् के दिव्य यश का वर्णन यहाँ प्रत्येक मानव के लिए *तीर्थ* के रूप में हुआ है। *गायन्तः* शब्द सूचित करता है कि मुनिगण अपना मौन-व्रत भंग करके एवं अन्य निजी कार्य का त्याग करके भगवान् के कार्यकलापों का गुणगान करते हैं। असली मौन का अर्थ है व्यर्थ न बोलना, अपनी वाणी को भगवान् की प्रेमाभक्ति से सम्बन्धित ध्वनि तथा बातचीत तक ही सीमित रखना।

अनघ शब्द बतलाता है कि भगवान् कभी कोई पाप कर्म या अपराध नहीं करते। यह शब्द इस बात को भी सूचित करता है कि वे अपने निष्ठावान भक्त द्वारा अकस्मात् किये गये पाप या अपराध को तुरन्त क्षमा कर देते हैं। इस श्लोक के विशेष संदर्भ में *अनघ* शब्द यह सूचित करता है कि बलराम जी लगातार पीछा करने वाले भौंरों से तनिक भी विचलित नहीं हो रहे थे। उन्होंने उन्हें यह आशीर्वाद दिया, ''हे भौंरो! मेरे गोपनीय कुंज में आओ और इसकी सुगन्धि का आनन्द लो।''

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान्हि सतां निसर्गः ॥ ७॥

शब्दार्थ

नृत्यन्ति—नाच रहे हैं; अमी—ये; शिखिनः—मयूर; ईड्य—हे आराध्य देव; मुदा—हर्ष से; हरिण्यः—हिरणियाँ; कुर्वन्ति—कर रही हैं; गोप्यः—गोपियाँ; इव—मानो; ते—आपके लिए; प्रियम्—प्रिय; ईक्षणेन—अपनी चितवन से; सूक्तैः—वैदिक स्तुतियों से; च—तथा; कोकिल-गणाः—कोयलें; गृहम्—अपने घर में; आगताय—आकर; धन्याः—भाग्यशाली; वन-ओकसः—जंगल के निवासी; इयान्—ऐसा; हि—निस्सन्देह; सताम्—सन्त पुरुषों की; निसर्गः—प्रकृति।

हे आराध्य ईश्वर, ये मोर प्रसन्नता के मारे आपके समक्ष नाच रहे हैं, हिरणियाँ अपनी स्नेहिल चितवनों से आपको गोपियों की भाँति प्रसन्न कर रही हैं। ये कोयलें आपका सम्मान वैदिक स्तुतियों द्वारा कर रही हैं। जंगल के ये सारे निवासी परम भाग्यशाली हैं और आपके प्रति इनका बर्ताव किसी महात्मा द्वारा अपने घर में आये अन्य महात्मा के स्वागत के अनुरूप है।

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-

पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

धन्या—भाग्यशाली; इयम्—यह; अद्य—अब; धरणी—पृथ्वी; तृण—घास; वीरुधः—तथा झाड़ियाँ; त्वत्—आपके; पाद—पैरों का; स्पृशः—स्पर्श पाकर; द्रुम—वृक्ष; लताः—तथा लताएँ; कर-ज—अपने हाथ के नाखूनों से; अभिमृष्टाः—स्पर्श की जाकर; नद्यः—नदियाँ; अद्रयः—तथा पर्वत; खग—पक्षी; मृगाः—तथा पशु; सदय—कृपापूर्ण; अवलोकैः—आपकी चितवनों से; गोप्यः—गोपियाँ; अन्तरेण—बीच में; भुजयोः—आपकी दो भुजाओं के; अपि—निस्सन्देह; यत्—जिसके लिए; स्पृहा—इच्छा रखती है; श्रीः—लक्ष्मी जी।

अब यह धरती परम धन्य हो गई है क्योंकि आपने अपने पैरों से इसकी घास तथा झाड़ियों का, अपने नाखूनों से इसके वृक्षों तथा लताओं का स्पर्श किया है और आपने इसकी नदियों, पर्वतों, पक्षियों तथा पशुओं पर अपनी कृपा-दृष्टि डाली है। इनसे भी बढ़ कर, आपने अपनी तरुणी गोपियों को अपनी दोनों भुजाओं में भर कर उनका आलिंगन किया है, जिसके लिए स्वयं लक्ष्मी जी लालायित रहती हैं।

तात्पर्य : *अद्य* शब्द इस धरा पर बलराम तथा कृष्ण के प्राकट्य का समय सूचित करता है। वराह का रूप धारण करके भगवान् कृष्ण ने स्वयं पृथ्वी को बचाया था और यह माना जाता है कि धरती स्थायी रूप से शेष के बल पर टिकी है। वराह तथा शेष दोनों ही बलराम के अंश हैं और स्वयं बलराम आदि भगवान् कृष्ण के अंश हैं। श्रीकृष्ण का कथन कि "यह धरती अब धन्य हो गई है" (*धन्येयमद्य धरणी*) यह इंगित करती है कि कृष्ण के रूप में भगवान् के आशीर्वाद के तुल्य कुछ भी नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण अपने अंश बलराम सहित प्रकट हुए हैं। *करजाभिमृष्टाः* अर्थात् नाखूनों से स्पर्श सामासिक पद है, जो सूचित करता है कि कृष्ण तथा बलराम साथ-साथ जंगल में जाते तो वृक्षों, झाड़ियों तथा लताओं से फल तथा फूल तोड़ते जाते और इनका उपयोग अपनी लीलाओं में करते। कभी कभी वे तोड़ी हुई पत्तियों को पुष्पों के साथ लगाकर अपने शरीरों को अलंकृत करते थे।

कृष्ण तथा बलराम वृन्दावन की समस्त नदियों, पहाड़ियों तथा प्राणियों को प्रेम तथा दया की दृष्टि से देखते थे। किन्तु कृष्ण द्वारा गोपियों को बाहुओं में भरकर आलिंगन किया जाना सबसे बड़ा वर था जिसके लिए लक्ष्मीजी भी तरसती लालायित थीं। वैकुण्ठ में भगवान् नारायण के वक्षस्थल पर निवास करने वाली लक्ष्मीजी को एक बार इच्छा हुई कि वे श्रीकृष्ण के वक्षस्थल से आलिंगनबद्ध हों तो इसके लिए उन्हें कठोर तपस्या करनी पड़ी। श्रीकृष्ण ने उन्हें बतलाया कि उनका वास्तविक स्थान वैकुण्ठ में

है और वे वृन्दावन में उनके वक्षस्थल पर निवास नहीं कर सकतीं। फलत: लक्ष्मीजी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उन्हें एक स्वर्णिम रेखा के रूप में अपने वक्षस्थल में रहने दें और भगवान् ने उन्हें यह वर दे दिया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने पुराणों से यह घटना सुनाई है।

श्रीशुक उवाच
एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्ण: प्रीतमना: पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रे: सरिद्रोध:सु सानुग: ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; वृन्दावनम्—वृन्दावन के जंगल तथा उसके निवासियों के प्रति; श्रीमत्—सुन्दर; कृष्ण:—भगवान् कृष्ण ने; प्रीत-मना:—मन में संतुष्ट हुए; पशून्—पशुओं को; रेमे—हर्ष का अनुभव किया; सञ्चारयन्—चराने में; अद्रे:—पर्वत के निकट; सरित्—नदी के; रोध:सु—किनारों पर; स-अनुग:—अपने साथियों समेत।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार वृन्दावन के रम्य जंगल तथा वृन्दावन के निवासियों के प्रति संतोष व्यक्त करते हुए भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत की तलहटी में यमुना नदी के तट पर अपने मित्रों सहित गौवों तथा अन्य पशुओं को चराने का आनन्द लिया।

क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतै: ।
उपगीयमानचरित: पथि सङ्कर्षणान्वित: ॥ १० ॥
अनुजल्पति जल्पन्तं कलवाक्यै: शुकं क्वचित् ।
क्वचित्सवल्गु कूजन्तमनुकूजति कोकिलम्
क्वचिच्च कालहंसानामनुकूजति कूजितम् ।
अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन्क्वचित् ॥ ११ ॥
मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ।
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; गायति—गाते हैं; गायत्सु—उनके गाने पर; मद-अन्ध—मद से अंधे होकर; अलिषु—भौंरे; अनुव्रतै:—अपने मित्रों के साथ; उपगीयमान—संगीत अलापते हुए; चरित:—लीलाएँ; पथि—रास्ते में; सङ्कर्षण-अन्वित:—बलराम के साथ; अनुजल्पति—नकल करते हैं; जल्पन्तम्—चहचहाने की; कल-वाक्यै:—तोतली वाणी में; शुकम्—तोतों की; क्वचित्—कभी; क्वचित्—कभी; स—सहित; वल्गु—मोहक; कूजन्तम्—कोयल की कूक; अनुकूजति—कू कू की नकल करते हैं; कोकिलम्—कोयल की; क्वचित्—कभी कभी; च—भी; कल-हंसानाम्—हंसों के; अनुकूजति कूजितम्—कोयल की कूक का अनुकरण करते हैं; अभिनृत्यति—नाचते हैं; नृत्यन्तम्—नाचते हुए; बर्हिणम्—मोर के समक्ष; हासयन्—हँसते हुए; क्वचित्—कभी; मेघ—बादल के समान; गम्भिरया—गम्भीर; वाचा—अपनी वाणी से; नामभि:—नाम लेकर; दूर-गान्—भटक कर दूर गए हुए; पशून्—पशुओं को; क्वचित्—कभी; आह्वयति—टेरते हैं; प्रीत्या—स्नेहपूर्वक; गो—गौवों; गोपाल—तथा ग्वालबालों को; मन:-ज्ञया—मन को मोहने वाली (वाणी) से।

कभी कभी वृन्दावन में भौंरे आनन्द में इतने मग्न हो जाते थे कि वे अपनी आँखें बन्द करके

गाने लगते थे। श्रीकृष्ण अपने ग्वालमित्रों तथा बलदेव के साथ जंगल में विचरण करते हुए अपने राग में उनके गुनगुनाने की नकल उतारते थे और उनके मित्र उनकी लीलाओं का गायन करते थे। भगवान् कृष्ण कभी कोयल की बोली की नकल उतारते तो कभी हंसों के कलरव की नकल उतारते। कभी वे मोर के नृत्य की नकल उतारते जिस पर उनके ग्वालमित्र खिलखिला पड़ते। कभी कभी वे बादलों जैसे गम्भीर गर्जन के स्वर में झुंड से दूर गये हुए पशुओं का नाम लेकर बड़े प्यार से पुकारते जिससे गौवें तथा ग्वालबाल मुग्ध हो जाते।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी लिखते हैं कि भगवान् कृष्ण अपने मित्रों से मजाक किया करते, ''देखो न, यह मोर ठीक से नाचना नहीं जानता।'' और तब वे बड़े जोश से मोर के नाच की नकल करते जिससे उनके मित्रों में हँसी के फौव्वारे छूटते। वृन्दावन के भौंरे फूलों का रस पीते और इस अमृत तथा श्रीकृष्ण की संगति के संयोग से वे मदान्ध हो होकर अपनी आँखें बन्द करके गुनगुनाकर अपनी तुष्टि व्यक्त करते। श्रीकृष्ण इस गुनगुनाने का बड़ी ही कुशलता से अनुकरण करते थे।

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ।
अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३॥

शब्दार्थ

चकोर-क्रौञ्च-चक्राह्व-भारद्वाजान् च—चकोर, कौंच, चक्राह्व तथा भारद्वाज नामक पक्षी; बर्हिणः—मोर; अनुरौति स्म—उनकी नकल उतारते; सत्त्वानाम्—अन्य प्राणियों सहित; भीत-वत्—डरे हुए की तरह; व्याघ्र-सिंहयोः—बाघों तथा सिंहों से।.

कभी कभी वे चकोर, क्रौंच, चक्राह्व, भारद्वाज जैसी पक्षियों की नकल करके चिल्लाते और कभी छोटे पशुओं के साथ बाघों तथा शेरों के बनावटी भय से भागने लगते।

तात्पर्य : *भीतवत्* अर्थात् ''मानो भयभीत हो'' सूचित करता है कि श्रीकृष्ण सामान्य बालक की तरह क्रीड़ा करते और बाघों तथा सिंहों के बनावटी भय से वे जंगल के क्षुद्र प्राणियों के साथ भागते थे। वस्तुतः भगवान् के धाम वृन्दावन में बाघ तथा सिंह हिंस्र नहीं होते अतः किसी प्रकार का भय होने का कोई कारण नहीं था।

क्वचित्क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी कभी; क्रीडा—खेलने से; परिश्रान्तम्—थके हुए; गोप—ग्वालबाल की; उत्सङ्ग—गोद; उपबर्हणम्—तकिया बना कर; स्वयम्—स्वयं भी; विश्रमयति—थकान मिटाते; आर्यम्—अपने बड़े भाई की; पाद-संवाहन-आदिभिः—उनके पाँव दबाकर तथा अन्य सेवाएँ करके।

जब उनके बड़े भाई खेलते खेलते थक कर अपना सिर किसी ग्वालबाल की गोद में रखकर लेट जाते तो भगवान् कृष्ण स्वयं बलराम के पाँव दबाकर तथा अन्य सेवाएँ करके उनकी थकान दूर करते।

तात्पर्य : *पाद-संवाहनादिभिः* शब्द सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण बलराम के पाँव दबाते, पंखा झलते और पीने के लिए नदी से जल लाते।

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान्हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नृत्यतः—नाचते हुए; गायतः—गाते हुए; क्व अपि—कभी कभी; वल्गतः—घूम-घूम कर; युध्यतः—झगड़ते हुए; मिथः—परस्पर; गृहीत-हस्तौ—एक दूसरे के हाथ पकड़ कर; गोपालान्—ग्वालबालों को; हसन्तौ—हँसते हुए; प्रशशंसतुः—वे दोनों प्रशंसा करते थे।

कभी कभी, जब ग्वालबाल नाचते, गाते, इधर उधर घूमते और खेल खेल में एक दूसरे से झगड़ते तो पास ही हाथ में हाथ डाले खड़े होकर कृष्ण तथा बलराम अपने मित्रों के कार्यकलापों की प्रशंसा करते और हँसते।

क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ।
वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; पल्लव—नई कोपलों से बनी; तल्पेषु—शय्याओं पर; नियुद्ध—झगड़ने से हुई; श्रम—थकावट से; कर्शितः—थके हुए; वृक्ष—वृक्ष की; मूल—जड़ के पास; आश्रयः—शरण लेकर; शेते—लेट जाते; गोप-उत्सङ्ग—किसी ग्वालबाल की गोद को; उपबर्हणः—तकिया बनाकर।

कभी कभी भगवान् कृष्ण झगड़ने से थक जाते और वृक्ष की जड़ के पास कोमल टहनियों तथा कलियों से बने हुए बिस्तर पर अपने किसी ग्वालबाल सखा की गोद को तकिया बना कर लेट जाते।

तात्पर्य : *पल्लव-तल्पेषु* शब्द बतलाता है कि भगवान् कृष्ण ने अनेक रूपों में अपना विस्तार किया और अपने उत्साही ग्वालमित्रों द्वारा टहनियों, पत्तियों तथा फूलों से जल्दी जल्दी बनाये गये बिस्तर पर लेट गये।

पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७॥

शब्दार्थ

पाद-संवाहनम्—पैर दबाने का कार्य; चक्रुः—किया; केचित्—किसी ने; तस्य—उनके; महा-आत्मनः—महान् आत्माओं ने; अपरे—अन्य; हत-पाप्मानः—समस्त पापों से मुक्त; व्यजनैः—पंखों से; समवीजयन्—भलीभाँति पंखा झला।.

तब कुछ ग्वालबाल जो सब के सब महान् आत्माएँ थे, उनके चरणकमल मलते और अन्य ग्वालबाल निष्पाप होने के कारण बड़ी ही कुशलतापूर्वक भगवान् पर पंखा झलते।

तात्पर्य : *समवीजयन्* शब्द सूचित करता है कि ग्वालबाल बड़ी ही पटुता से भगवान् के ऊपर पंखा झल रहे थे जिससे शीतल वायु उत्पन्न हो रही थी।

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य; तत्-अनुरूपाणि—समयोचित; मनः-ज्ञानि—मन को आकृष्ट करने वाले; महा-आत्मनः—महापुरुष (कृष्ण) के; गायन्ति स्म—गाते थे; महा-राज—हे राजा परीक्षित; स्नेह—स्नेह से; क्लिन्न—द्रवित; धियः—उनके हृदय; शनैः—धीरे धीरे।.

हे राजन्, अन्य बालक समयोचित मनोहर गीत गाते और उनके हृदय भगवान् के प्रति प्रेम से द्रवित हो उठते।

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया
गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।
रेमे रमालालितपादपल्लवो
ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निगूढ—छिपाया हुआ; आत्म-गतिः—निजी ऐश्वर्य; स्व-मायया—अपनी ही योग शक्ति से; गोप-आत्मजत्वम्—ग्वाले का पुत्रत्व; चरितैः—अपने कार्यकलापों से; विडम्बयन्—बहाना करते हुए; रेमे—आनन्द लिया; रमा—लक्ष्मीजी द्वारा; लालित—सेवित; पाद-पल्लवः—कोमल नवीन कली जैसे पाँव; ग्राम्यैः समम्—ग्रामीण लोगों के साथ; ग्राम्य-वत्—ग्रामीण पुरुष की भाँति; ईश-चेष्टितः—भगवान् के अद्वितीय कार्य भी प्रदर्शित करते हुए।.

इस तरह भगवान् जिनके कोमल चरणकमलों की सेवा लक्ष्मीजी स्वयं करती हैं, अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा अपने दिव्य ऐश्वर्य को छिपा कर ग्वालपुत्र की तरह कार्य करते। अन्य ग्रामवासियों के साथ ग्रामीण बालक की भाँति विचरण करते हुए वे कभी कभी ऐसे करतब दिखलाते जो केवल ईश्वर ही कर सकता है।

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ।
सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्रीदामा नाम—श्रीदामा नामक; गोपालः—ग्वालबाल; राम-केशवयोः—राम तथा कृष्ण दोनों का; सखा—मित्र; सुबल-स्तोककृष्ण-आद्याः—सुबल, स्तोककृष्ण तथा अन्य; गोपाः—ग्वालबाल; प्रेम्णा—प्रेमपूर्वक; इदम्—यह; अब्रुवन्—बोले।

एकबार राम तथा कृष्ण के अत्यन्त घनिष्ट मित्र श्रीदामा, सुबल, स्तोककृष्ण तथा अन्य ग्वालबाल बड़े ही प्रेमपूर्वक इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : *प्रेम्णा* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण तथा बलराम के सामने प्रस्तुत की जाने वाली याचना प्रेम से प्रेरित थी, किसी व्यक्तिगत इच्छा से नहीं। ग्वालबाल इच्छुक थे कि कृष्ण तथा बलराम असुरों के संहार तथा तालवन के मधुर फलों के खाने की लीलाएँ प्रदर्शित करें। इसीलिए इन्होंने निम्नानुसार अनुरोध किया।

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसङ्कुलम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

राम राम—हे राम; महा-बाहो—हे शक्तिशाली भुजाओं वाले; कृष्ण—हे कृष्ण; दुष्ट-निबर्हण—दुष्टों का अन्त करने वाले; इतः—यहाँ से; अविदूरे—दूर नहीं; सु-महत्—अत्यन्त विस्तृत; वनम्—जंगल; ताल-आलि—ताड़ वृक्षों की पंक्तियों से; सङ्कुलम्—परिपूर्ण।

[ग्वालबालों ने कहा] : हे राम, हे महाबाहु, हे कृष्ण, हे दुष्टों के संहर्ता, यहाँ से कुछ ही दूरी पर एक बहुत ही विशाल जंगल है, जो ताड़ वृक्षों की पाँतों से परिपूर्ण है।

तात्पर्य : *वराह पुराण* में कहा गया है—

अस्ति गोवर्धनं नाम क्षेत्रं परमदुर्लभम् ।

मथुरापश्चिमे भागे अदूराद् योजनद्वयम् ।

"मथुरा के पश्चिम दो योजन (सोलह मील) की दूरी पर गोवर्धन नामक एक पवित्र स्थान है, जिसे प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन है।" *वराह पुराण* में यह भी कहा गया है :

अस्ति तालवनं नाम धेनुकासुररक्षितम् ।

मथुरापश्चिमे भागे अदूराद् एकयोजनम् ॥

"मथुरा से पश्चिम दिशा में निकट ही एक योजन (आठ मील) की दूरी पर तालवन नामक जंगल

है, जिसकी रखवाली धेनुकासुर करता था। ''अत: ऐसा प्रतीत होता है कि तालवन मथुरा तथा गोवर्धन पर्वत के बीचोबीच स्थित है। *श्रीहरिवंश पुराण* में तालवन का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है :

स तु देश: सम: स्निग्ध: सुमहान् कृष्णमृत्तिक:।

दर्भप्राय: स्थुलीभूतो लोष्ट्र-पाषाणवर्जित:॥

''यहाँ की भूमि समतल एवं अत्यन्त विस्तीर्ण है। उसकी मिट्टी काली है, दर्भ घास से ढकी है और कंकड़-पत्थर से रहित है।''

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ।
सन्ति किन्त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥ २२॥

शब्दार्थ

फलानि—फलों; तत्र—वहाँ; भूरीणि—अनेकानेक; पतन्ति—गिरते रहते हैं; पतितानि—पहले ही गिर चुके हैं; च—तथा; सन्ति—हैं; किन्तु—फिर भी; अवरुद्धानि—नियंत्रण में रखे हुए; धेनुकेन—धेनुक द्वारा; दुरात्मना—दुष्ट।

उस तालवन में वृक्षों से अनेकानेक फल गिरते रहते हैं और बहुत से फल पहले से ही जमीन पर पड़े हुए हैं। किन्तु इन सारे फलों की रखवाली दुष्ट धेनुक द्वारा की जा रही है।

तात्पर्य : धेनुकासुर तालवन के ताड़ वृक्षों के स्वादिष्ट पके फलों को किसी को खाने नहीं देता था अत: कृष्ण के तरुण मित्रों ने जनता के इस जंगल के फलों का मजा लूटने के अधिकार से अनुचित तौर पर वंचित होने का विरोध किया।

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ।
आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृत: ॥ २३॥

शब्दार्थ

स:—वह; अति-वीर्य:—अत्यन्त शक्तिशाली; असुर:—असुर; राम—हे राम; हे कृष्ण—हे कृष्ण; खर-रूप—गधे का रूप; धृक्—धारण करके; आत्म-तुल्य—अपने समान; बलै:—जिनकी शक्ति; अन्यै:—अन्य; ज्ञातिभि:—साथियों के साथ; बहुभि:—अनेक; वृत:—घिरा हुआ।

हे राम, हे कृष्ण, धेनुक अत्यन्त बलशाली असुर है और उसने गधे का वेश बना रखा है। उसके आसपास अनेक मित्र हैं जिन्होंने उसी जैसा ही रूप धारण कर रखा है और वे उसी के समान बलशाली हैं।

तस्मात्कृतनराहाराद्धीतैर्नृभिरमित्रहन् ।

न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

तस्मात्—उससे; कृत-नर-आहारात्—मनुष्यों को खा जाने वाले से; भीतैः—डरे हुए; नृभिः—मनुष्यों के द्वारा; अमित्र-हन्—हे शत्रुओं का वध करने वाले; न सेव्यते—सेवन नहीं किया जाता; पशु-गणैः—विभिन्न पशुओं के द्वारा; पक्षि-सङ्घैः—पक्षियों के झुंड द्वारा; विवर्जितम्—परित्यक्त।

धेनुकासुर ने जीवित मनुष्यों को खा लिया है इसलिए सारे लोग तथा पशु तालवन जाने से डरते हैं। हे शत्रुहन्ता, पक्षी तक उड़ने से डरते हैं।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम के ग्वालमित्रों ने दोनों भाइयों को प्रोत्साहित किया कि वे तुरन्त तालवन जाकर धेनुकासुर का वध करें। वे उन्हें *अमित्र-हन्* कहकर सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ है ''शत्रु का हन्ता।'' ग्वालबालों ने भगवान् की शक्ति का आनन्दमय चिन्तन करते हुए तर्क किया, ''कृष्ण पहले ही बक तथा अघ जैसे भयानक असुरों का वध कर चुके हैं अतएव इस घृणास्पद धेनुक नामक गर्दभ के विषय में वह कौन सी विशेष बात हो सकती है, जिसके कारण यह वृन्दावन का कट्टर शत्रु बना हुआ है।''

ग्वालबाल चाहते थे कि कृष्ण तथा बलराम इन असुरों का वध करें जिससे वृन्दावन के पुण्यात्मा निवासी तालवन के फलों का आस्वादन कर सकें। इस तरह उन्होंने विशेष कृपा किये जाने की प्रार्थना की कि गर्दभ-असुरों का वध किया जाय।

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ।
एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५॥

शब्दार्थ

विद्यन्ते—उपस्थित हैं; अभुक्त-पूर्वाणि—इसके पूर्व कभी भी जिनका स्वाद नहीं लिया गया; फलानि—फल; सुरभीणि—सुगन्धित; च—तथा; एषः—यह; वै—निस्सन्देह; सुरभिः—सुगन्धित; गन्धः—सुगन्धि; विषूचीनः—सर्वत्र फैली हुई; अवगृह्यते—अनुभव की जाती है।

तालवन में ऐसे मधुर गन्ध वाले फल हैं, जिन्हें किसी ने कभी नहीं चखा। तालफलों की चारों ओर फैली खुशबू को हम अब भी सूँघ सकते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार तालफलों की मधुर सुगंध पुरवा हवा द्वारा ले जाई जाती थी जो वृन्दावन में वर्षा कराने में लाभदायी होती है। यह पुरवा हवा सामान्यतया भादों मास में चलती हैं और इस तरह फलों की सर्वोच्च पक्वता को सूचित करती है। यह तथ्य कि बालगण सुगन्ध को जान गए यह बतलाता है कि तालवन निकट ही था।

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ।
वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

प्रयच्छ—कृपया दीजिये; तानि—उनको; नः—हमको; कृष्ण—हे कृष्ण; गन्ध—सुगन्धि से; लोभित—लुब्ध; चेतसाम्—जिनके मन; वाञ्छा—इच्छा; अस्ति—है; महती—विशाल; राम—हे राम; गम्यताम्—हमें जाने दें; यदि—यदि; रोचते—अच्छा विचार जैसा लगता है।

हे कृष्ण! आप हमारे लिए वे फल ला दें। हमारे मन उनकी सुगन्ध से अत्यधिक आकृष्ट हैं। हे बलराम, उन फलों को पाने की हमारी इच्छा अत्यन्त प्रबल है। यदि आप सोचते हैं कि यह विचार अच्छा है, तो चलिये उस तालवन में चलें।

तात्पर्य : यद्यपि तालवन तक न मनुष्य, न ही पशु-पक्षी पहुँच पाते थे किन्तु ग्वालबालों को कृष्ण तथा बलराम पर इतना भरोसा था कि उन्होंने पक्का मान लिया था कि ये दोनों स्वामी बिना प्रयास के पापी गर्दभ असुरों को मार कर स्वादिष्ट तालफल प्राप्त कर सकते हैं। कृष्ण के ग्वालबाल मित्र अत्यन्त उच्च स्वरूपसिद्ध आत्माएँ हैं, जो सामान्यतया मीठे फलों के लिए ललचाने वाले न थे। वस्तुतः वे भगवान् से केवल हँसी-मजाक कर रहे हैं और उन्हें तालवन में अभूतपूर्व वीरतापूर्वक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। वृन्दावन में कृष्ण के रहते हुए असंख्य असुरों ने वहाँ के दिव्य वातावरण को क्षुब्ध कर रखा था और भगवान् उनको अपनी दैनिक लीला के रूप में मार देंगे।

चूँकि कृष्ण बहुत से असुरों का वध कर चुके थे अतः आज के दिन उन्होंने बलराम को यह श्रेय देना चाहा कि उन्हें प्रथम असुर धेनुकासुर का वध करना होगा। *यदि रोचते* कथन से ग्वालबालों का आशय यह है कि कृष्ण तथा बलराम इस असुर का वध ग्वालबालों को तुष्ट करने के लिए नहीं अपितु उन्हें ठीक लगे तभी करें।

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ।
प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सुहृत्—अपने मित्रों के; वचः—शब्द; श्रुत्वा—सुनकर; सुहृत्—मित्रों को; प्रिय—हर्ष; चिकीर्षया—प्रदान करने की इच्छा से; प्रहस्य—हँस कर; जग्मतुः—दोनों गये; गोपैः—ग्वालबालों के द्वारा; वृतौ—घिरे हुए; ताल-वनम्—तालवन तक; प्रभू—दोनों स्वामी।

अपने प्रिय सखाओं के वचन सुनकर कृष्ण तथा बलराम हँस पड़े और उन्हें खुश करने के

लिए वे अपने ग्वालमित्रों के साथ तालवन के लिए रवाना हो गये।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण सोच रहे थे, ''भला गर्दभ इतना विचित्र कैसे हो सकता है?'' अत: अपने बालमित्रों के अनुनय-विनय पर उन्हें हँसी आ गई। जैसाकि भगवान् कपिल ने *श्रीमद्भागवत* (३.२८.३२) में कहा है—*हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्*—भगवान् की हँसी अत्यन्त उदार होती है। जो लोग भगवान् के समक्ष नतमस्तक होते हैं, उनके इस जगत के कष्टों से उत्पन्न अश्रुओं के सागर को भगवान् की हँसी सुखा देती है। अत: अपने बालसखाओं को प्रोत्साहित करने के लिए कृष्ण तथा बलराम हँसे और तुरन्त ही उनको साथ लेकर तालवन के लिए चल पड़े।

बल: प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्सम्परिकम्पयन् ।
फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

बल:—बलराम ने; प्रविश्य—घुस कर; बाहुभ्याम्—अपनी दोनों भुजाओं से; तालान्—ताड़ वृक्षों को; सम्परिकम्पयन्—झकझोरते हुए; फलानि—फलों को; पातयाम् आस—गिरा दिया; मतम्-गज:—मतवाला हाथी; इव—सदृश; ओजसा—अपने बल से।

भगवान् बलराम सबसे पहले तालवन में प्रविष्ट हुए। तब अपने दोनों हाथों से मतवाले हाथी का बल लगाकर वृक्षों को हिलाने लगे जिससे ताड़ के फल भूमि पर आ गिरें।

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभ: ।
अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

फलानाम्—फलों के; पतताम्—गिरते हुए; शब्दम्—शब्द को; निशम्य—सुनकर; असुर-रासभ:—गर्दभ वेशधारी असुर; अभ्यधावत्—आगे दौड़ा; क्षिति-तलम्—पृथ्वी की सतह को; स-नगम्—वृक्षों समेत; परिकम्पयन्—हिलाता हुआ।

गिरते हुए फलों की ध्वनि सुनकर गर्दभ असुर धेनुक पृथ्वी तथा वृक्षों को थरथराता हुआ आक्रमण करने के लिए उनकी ओर दौड़ा।

समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ।
निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खल: ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

समेत्य—उनसे मिल कर; तरसा—तेजी से; प्रत्यक्—पिछला; द्वाभ्याम्—दोनों; पद्भ्याम्—पैरों से; बलम्—बलदेव को; बली—बलशाली असुर ने; निहत्य—वार करके; उरसि—छाती पर; का-शब्दम्—भद्दी रेंकने की आवाज; मुञ्चन्—करते हुए; पर्यसरत्—चारों ओर दौड़ने लगा; खल:—दुष्ट गधा।

वह बलशाली असुर बलराम की ओर झपटा और उनकी छाती पर अपने पिछले पैरों के खुरों से कठोर वार किया। तत्पश्चात् धेनुक जोर जोर से रेंकता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा।

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक्स्थितः ।
चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

पुनः—फिर से; आसाद्य—उनके निकट आकर; संरब्धः—प्रचण्ड, उग्र; उपक्रोष्टा—गधे ने; पराक्—उनकी ओर अपनी पीठ करके; स्थितः—खड़े होकर; चरणौ—दोनों पैर; अपरौ—पिछले; राजन्—हे राजा परीक्षित; बलाय—बलराम पर; प्राक्षिपत्—चलाया; रुषा—क्रोध से।

हे राजन्, वह क्रुद्ध गधा फिर से बलराम की ओर बढ़ा और अपनी पीठ उनकी ओर करके खड़ा हो गया। तत्पश्चात् क्रोध से रेंकते हुए उस असुर ने उन पर दुलत्ती चलाई।

तात्पर्य : *उपक्रोष्टा* शब्द न केवल गधे को अपितु पास ही रेंकते हुए गधे को सूचित करता है। इस तरह यहाँ यह इंगित हुआ है कि बलशाली धेनुक क्रोध भरी भयानक आवाज निकाल रहा था।

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सः—उन्होंने; तम्—उसको; गृहीत्वा—पकड़ कर; प्रपदोः—खुर से; भ्रामयित्वा—घुमा कर; एक-पाणिना—एक हाथ से; चिक्षेप—फेंक दिया; तृण-राज-अग्रे—तालवृक्ष की चोटी पर; भ्रामण—घुमाने से; त्यक्त—त्याग कर; जीवितम्—अपने प्राण।

बलराम ने धेनुक के खुर पकड़े, उसे एक हाथ से घुमाया और ताड़वृक्ष की चोटी पर फेंक दिया। इस तरह तेजी से घुमाने के कारण वह असुर मर गया।

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः ।
पार्श्वस्थं कम्पयन्भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तेन—उस (धेनुकासुर के मृत शरीर) से; आहतः—चोट खाकर; महा-तालः—ताड़ का विशाल वृक्ष; वेपमानः—हिलता हुआ; बृहत्-शिराः—विशाल चोटी वाला; पार्श्व-स्थम्—पास ही स्थित अन्य वृक्षों को; कम्पयन्—हिलाता हुआ; भग्नः—टूटा हुआ; सः—वह; च—तथा; अन्यम्—दूसरे को; सः—वह; अपि—भी; च—तथा; अपरम्—अगले, अन्य को।

बलराम ने धेनुकासुर के मृत शरीर को जंगल के सबसे ऊँचे ताड़ वृक्ष के ऊपर फेंक दिया और जब यह मृत शरीर उस वृक्ष की चोटी पर जा गिरा तो वह वृक्ष हिलने लगा। इस विशाल वृक्ष से पास का एक अन्य वृक्ष भी चरमराया और असुर के भार के कारण टूट गया। इसके

निकट का वृक्ष भी इसी तरह हिल कर टूट गया। इस तरह एक एक करके जंगल के अनेक वृक्ष हिले और टूट गये।

तात्पर्य : बलराम ने धेनुकासुर को इतनी तेजी से विशाल ताड़ वृक्ष के ऊपर पटका कि प्रतिक्रियाओं की एक शृंखला पैदा हो गई जिसके फलस्वरूप अनेक ऊँचे-ऊँचे ताड़ वृक्ष हिल हिल कर, घोर अड़भड़ाहट टूट कर, भूमि पर गिर पड़े।

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ।
तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४॥

शब्दार्थ

बलस्य—बलराम की; लीलया—लीला से; उत्सृष्ट—ऊपर फेंका हुआ; खर-देह—गधे के शरीर से; हत-आहताः—एक दूसरे से भिड़ कर; तालाः—ताल के वृक्ष; चकम्पिरे—चरमराये; सर्वे—सभी; महा-वात—प्रबल वायु द्वारा; ईरिताः—उड़ाये हुए; इव—मानो।.

बलराम द्वारा इस गर्दभ असुर के शरीर को सबसे ऊँचे ताड़वृक्ष के ऊपर फेंकने की लीला से सारे वृक्ष चरमराने लगे और एक दूसरे से भिड़ने लगे मानो प्रबल झंझा के द्वारा झकझोरे गये हों।

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ।
ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; चित्रम्—आश्चर्यजनक; भगवति—भगवान् के लिए; हि—निस्सन्देह; अनन्ते—अनन्त; जगत्-ईश्वरे—ब्रह्माण्ड के स्वामी; ओत-प्रोतम्—ऊपर नीचे फैला हुआ (ताना बाना); इदम्—यह ब्रह्माण्ड; यस्मिन्—जिसमें; तन्तुषु—इसके धागों पर; अङ्ग—हे परीक्षित; यथा—जिस तरह.

हे परीक्षित, बलराम को अनन्त भगवान् एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियन्ता जान लेने पर बलराम द्वारा धेनुकासुर का मारा जाना उतना आश्चर्यजनक नहीं है। निस्सन्देह, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन पर उसी प्रकार टिका है, जिस तरह बुना हुआ वस्त्र तानों-बानों पर टिका रहता है।

तात्पर्य : अभागे व्यक्ति भगवान् की आनन्दमय लीलाओं को नहीं समझ सकते। इस प्रसंग में, श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि भगवान् में असीम शक्ति है जैसाकि *अनन्ते* शब्द से प्रकट है। भगवान् विशेष अवसर की आवश्यकता के अनुसार अपनी शक्ति के एक सूक्ष्म अंश का प्रदर्शन करते हैं। बलराम जी ने तालवन में अवैध रूप से कब्जा करने वाले आसुरी गधों के झुंड को विनष्ट करना

चाहा। अत: उन्होंने धेनुकासुर तथा अन्य असुरों को सहज ही मार डालने भर की दिव्य शक्ति का प्रदर्शन किया।

तत: कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ।
क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबान्धवा: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तत:—तत्पश्चात्; कृष्णम्—कृष्ण पर; च—तथा; रामम्—बलराम पर; च—तथा; ज्ञातय:—घनिष्ठ मित्र गण; धेनुकस्य—धेनुक के; ये—जो; क्रोष्टार:—गधों ने; अभ्यद्रवन्—आक्रमण किया; सर्वे—सभी; संरब्धा:—क्रुद्ध; हत-बान्धवा:—अपने मित्र के मारे जाने से।

धेनुकासुर के घनिष्ठ मित्र, अन्य गर्दभ असुर, उसकी मृत्यु देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और वे तुरन्त कृष्ण तथा बलराम पर आक्रमण करने के लिए दौड़े।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है ''यहाँ यह कहा गया है कि गर्दभासुरों ने सर्वप्रथम कृष्ण पर हमला किया और तब बलराम पर (*कृष्णं च रामं च*)। इसका एक कारण यह हो सकता है कि ये असुर बलराम के शौर्य को देख चुके थे अत: पहले उन्होंने कृष्ण पर वार करना उचित समझा। अथवा यह हो सकता है कि अपने बड़े भाई के स्नेहवश, कृष्ण बलराम तथा इन असुरों के बीच आ गये हों। *कृष्णं च रामं च* शब्दों से यह भी सूचित हो सकता है कि अपने छोटे भाई के स्नेहवश बलराम कृष्ण की ओर चले गये हों।''

तांस्तानापतत: कृष्णो रामश्च नृप लीलया ।
गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तान् तान्—एक एक करके, वे सभी; आपतत:—आक्रमण करते हुए; कृष्ण:—कृष्ण ने; राम:—बलराम ने; च—तथा; नृप—हे राजन्; लीलया—सरलता से; गृहीत—पकड़ कर; पश्चात्-चरणान्—पिछली टाँगों को; प्राहिणोत्—फेंक दिया; तृण-राजसु—ताड़ के वृक्षों के ऊपर।

हे राजन्, जब असुरों ने आक्रमण किया कृष्ण तथा बलराम ने उनकी पिछली टाँगों से पकड़-पकड़ कर उन सब को ताड़ वृक्षों के ऊपर फेंक दिया।

फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभि: ।
रराज भू: सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

फल-प्रकर—फलों के ढेर से; सङ्कीर्णम्—ढकी; दैत्य-देहैः—असुरों के शरीरों से; गत-असुभिः—प्राणविहीन; रराज—सुशोभित; भूः—पृथ्वी; स-ताल-अग्रैः—ताड़ वृक्षों की चोटियों समेत; घनैः—बादलों से; इव—जिस तरह; नभः-तलम्—आकाश।

इस तरह फलों के ढेरों से तथा ताड़ वृक्ष की टूटी चोटियों में फँसे असुरों के मृत शरीरों से ढकी हुई पृथ्वी अत्यन्त सुन्दर लग रही थी मानो बादलों से आकाश अलंकृत हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार असुरों के शरीर काले तथा नीले बादलों जैसे काले थे और उनके शरीरों से बड़ी मात्रा में बहकर निकला रक्त चमकीले लाल बादलों जैसा लग रहा था। इस तरह सारा दृश्य अत्यन्त सुन्दर था। राम तथा कृष्ण जैसे विविध रूपों में भगवान् सदैव दिव्य लगते हैं और जब वे अपनी दिव्य लीलाएँ करते हैं, तो परिणाम भी सुन्दर और दिव्य होता है भले ही वे कट्टर गर्दभासुरों के वध जैसे उग्र कार्य क्यों न कर रहे हों।

तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादयः ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों भाइयों के; तत्—उस; सु-महत्—अत्यन्त महान; कर्म—कार्य को; निशम्य—सुनकर; विबुध-आदयः—देवता गण तथा अन्य उच्च जीवों ने; मुमुचुः—छोड़ा; पुष्प-वर्षाणि—फूलों की वर्षा; चक्रुः—सम्पन्न किया; वाद्यानि—संगीत; तुष्टुवुः—स्तुति की।

दोनों भाइयों का यह सुन्दर करतब (लीला) सुनकर देवताओं तथा अन्य उच्चस्थ प्राणियों ने फूलों की वर्षा की और उनकी प्रशंसा में गीत गाये तथा स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी टीका करते हैं कि देवता, ऋषिमुनि तथा अन्य उच्च प्राणी तालवन में कृष्ण तथा बलराम द्वारा अत्यन्त शक्तिशाली गर्दभ असुरों का इतनी तेजी और आसानी से मारा जाना देख कर चकित एवं हर्षित थे।

अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ।
तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; ताल—ताड़ वृक्षों के; फलानि—फलों को; आदन्—खाया; मनुष्याः—मनुष्यगण; गत-साध्वसाः—निडर होकर; तृणम्—घास; च—तथा; पशवः—पशुगण; चेरुः—चरने लगे; हत—मारा गया; धेनुक—धेनुकासुर का; कानने—जंगल में।

जिस वन में धेनुकासुर मारा गया था, उसमें लोग मुक्त भाव से फिर से जाने लगे और निडर होकर ताड़ वृक्षों के फल खाने लगे। अब गौवें भी वहाँ पर स्वतंत्रतापूर्वक घास चरने लगीं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार निम्न जाति के लोग, यथा पुलिन्द ताड़वृक्ष के फल खाते थे किन्तु कृष्ण के ग्वालमित्रों ने उन्हें खाना उचित नहीं समझा क्योंकि वे गधों के रक्त से सन चुके थे।

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—भगवान् कृष्ण; कमल-पत्र-अक्षः—कमल की पंखड़ियों के समान नेत्रों वाले; पुण्य-श्रवण-कीर्तनः—जिनका श्रवण तथा कीर्तन अत्यन्त पुण्य कार्य माना जाता है; स्तूयमानः—स्तुति किया गया; अनुगैः—अपने अनुयायी; गोपैः—ग्वालबालों के द्वारा; स-अग्र-जः—अपने बड़े भाई बलराम के साथ साथ; व्रजम्—व्रज; आव्रजत्—लौट आये।

तत्पश्चात् कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्ण, जिनके यश को सुनना और जिनका कीर्तन करना अत्यन्त पवित्र है, अपने बड़े भाई बलराम के साथ अपने घर व्रज लौट आये। रास्ते भर उनके श्रद्धावान अनुयायी ग्वालबालों ने उनके यश का गान किया।

तात्पर्य : जब कृष्ण के यश का उच्चारण किया जाता है, तो वक्ता तथा श्रोता दोनों ही शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं।

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुम्क्वणन्तमनुगैरुपगीतकीर्तिं
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; गो-रजः—गायों के चलने से उठी हुई धूल से; छुरित—सने; कुन्तल—बालों के भीतर; बद्ध—बँधा हुआ; बर्ह—मोरपंख; वन्य-प्रसून—जंगली फूल; रुचिर-ईक्षण—मोहने वाली आँखें; चारु-हासम्—तथा सुन्दर मुसकान; वेणुम्—बाँसुरी; क्वणन्तम्—बजाते हुए; अनुगैः—अपने साथियों के द्वारा; उपगीत—गायी जाकर; कीर्तिम्—उनकी कीर्ति; गोप्यः—गोपियाँ; दिदृक्षित—देखने के लिए उत्सुक; दृशः—उनकी आँखें; अभ्यगमन्—आगे बढ़ीं; समेताः—एकसाथ।

गौवों के द्वारा उड़ाई गई धूल से सने श्रीकृष्ण के बाल मोर पंख तथा जंगली फूलों से सज्जित किये गये थे। भगवान् कृष्ण अपनी वंशी बजाते हुए मोहक दृष्टि से देख रहे थे और सुन्दर ढंग से हँस रहे थे तथा उनके संगी उनके यश का गान कर रहे थे। सारी गोपियाँ एकसाथ उनसे मिलने चली आईं क्योंकि उनके नेत्र दर्शन करने के लिए अत्यन्त व्यग्र थे।

तात्पर्य : बाह्य रूप से गोपियाँ विवाहित तरुणियाँ थीं फलतः वे श्रीकृष्ण जैसे सुन्दर तरुण से आँखें मिलाने में संकोच कर रही थीं और डर रही थीं। किन्तु श्रीकृष्ण तो भगवान् हैं और सारे जीव

उनके नित्य दास हैं। इसलिए गोपियाँ, यद्यपि हृदय से अत्यन्त शुद्ध आत्माएँ थीं किन्तु वे सुन्दर तरुण श्रीकृष्ण के दर्शन करके प्रेमपीड़ित आँखों को तुष्ट करने के लिए आगे आने में तनिक भी नहीं सकुचाईं। गोपियों ने उनकी वंशी की मधुर ध्वनि का तथा उनके शरीर की मोहक सुगन्ध का भी आस्वादन किया।

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गै-
स्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

पीत्वा—पीकर; मुकुन्द-मुख—भगवान् मुकुन्द के मुख का; सारघम्—मधु; अक्षि-भृङ्गैः—भौंरे जैसे नेत्रों से; तापम्—पीड़ा; जहुः—त्याग दिया; विरह-जम्—विरह से उत्पन्न; व्रज-योषितः—वृन्दावन की स्त्रियों ने; अह्नि—दिन में; तत्—उस; सत्-कृतिम्—आदर करते हुए; समधिगम्य—पूरी तरह स्वीकार करके; विवेश—उन्होंने प्रवेश किया; गोष्ठम्—ग्वालों के गाँव में; स-व्रीड—लज्जा सहित; हास—हँसी; विनयम्—तथा विनयशीलता; यत्—जो; अपाङ्ग—तिरछी चितवनों का; मोक्षम्—डाला जाना।

वृन्दावन की स्त्रियों ने अपने भ्रमर रूपी नेत्रों से मुकुन्द के सुन्दर मुख का मधुपान किया और इस तरह दिन में वियोग के समय उन्हें जो पीड़ा हुई थी उसे उन्होंने त्याग दिया। वृन्दावन की तरुण स्त्रियों ने भगवान् पर तिरछी चितवन डाली जो लाज, हँसी तथा विनय से पूर्ण थी तथा कृष्ण ने इस चितवन को समुचित सम्मान मानते हुए गोप-ग्राम में प्रवेश किया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है ''कृष्ण की अनुपस्थिति के कारण सारी गोपियाँ वृन्दावन में अत्यधिक उदास रहती थीं। वे सारा दिन या तो जंगल में विचरण कर रहे या चरागाह में गौवें चराते कृष्ण का चिन्तन करती रहतीं। किन्तु जब उन्होंने कृष्ण को लौटकर आते देखा तो उनकी सारी चिन्ताएँ दूर हो गईं और वे कृष्ण के मुख की ओर उसी प्रकार देखने लगीं जिस तरह कमल के फूल के मधु के लिए भौंरे मँडराते हैं। जब कृष्ण गाँव में प्रविष्ट हुए तो तरुण गोपियाँ मुसकाने लगीं। अपनी वंशी बजाते कृष्ण ने गोपियों के सुन्दर हँसमुख चेहरों का आनन्द लूटा।''

भगवान् श्रीकृष्ण शृंगार कौशल के परम स्वामी हैं। उन्होंने वृन्दावन की तरुण गोपियों के साथ प्रेमालाप किया। जब कोई कुमारी युवती प्रेम करती है, तो वह अपने प्रेमी को लज्जा, हर्ष तथा विनय

के साथ तिरछी नजरों से देखती है। जब प्रेमी उसकी चितवन का प्रेम-निमंत्रण स्वीकार कर लेता है और उससे संतुष्ट हो जाता है, तो प्रेमिका का हृदय सुख से ओतप्रोत हो उठता है। ये सचमुच में सुन्दर तरुण कृष्ण तथा वृन्दावन की प्रेमपिपासु गोपियों के बीच चल रहे प्रेमालाप के आदान-प्रदान थे।

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों; यशोदा-रोहिण्यौ—यशोदा तथा रोहिणी (कृष्ण तथा बलराम की माताओं) ने; पुत्रयोः—पुत्रों को; पुत्र-वत्सले—अपने पुत्रों के स्नेहसिक्त; यथा-कामम्—अपनी अपनी इच्छाओं के अनुरूप; यथा-कालम्—परिस्थितियों के अनुरूप; व्यधत्ताम्—प्रस्तुत किया; परम-आशिषः—उत्तम भेंटें।

माता यशोदा तथा रोहिणी ने अपने दोनों पुत्रों के प्रति अत्यधिक स्नेह दर्शाते हुए उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार तथा समयानुकूल उत्तमोत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं।

तात्पर्य : *परमाशिषः* शब्द प्रेममयी माताओं के आशीर्वाद को सूचित करता है, जिसके अन्तर्गत उत्तम भोजन, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, खिलौने तथा स्थायी स्नेह निहित हैं। *यथाकामं यथाकालम्* यह बतलाते हैं कि यद्यपि यशोदा तथा रोहिणी ने कृष्ण तथा बलराम की सारी इच्छाएँ पूरी कर दीं किन्तु साथ ही उन्होंने अपने पुत्रों के कार्यकलापों को भी नियमित बनाया। दूसरे शब्दों में, उन्होंने अपने पुत्रों के लिए उत्तम भोजन तैयार किया किन्तु साथ ही उन्होंने इसका भी ध्यान रखा कि वे समय से भोजन करें। इसी तरह उनके द्वारा उचित समय पर खेलने और उचित समय से सोने का भी ध्यान रखा। *यथाकामम्* का अर्थ यह नहीं हैं कि माताओं ने अपने पुत्रों को मनमाना करने की छूट दे दी थी अपितु उन्होंने शिष्ट ढंग से अपने पुत्रों पर आशीष की वर्षा की थी।

श्रील सनातन गोस्वामी टीका करते हैं कि माताएँ अपने पुत्रों को इतना अधिक प्यार करती थीं कि जब वे उनका आलिंगन करतीं तो ठीक से देखतीं कि उनके सारे अंग स्वस्थ तथा पुष्ट तो हैं।

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ।
नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्त्रग्गन्धमण्डितौ ॥ ४५॥

शब्दार्थ

गत—दूर हो गयी; अध्वान-श्रमौ—चलते रहने से उत्पन्न थकान; तत्र—वहाँ (घर में); मज्जन—स्नान; उन्मर्दन—मालिश; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; नीवीम्—अधोवस्त्रों को; वसित्वा—पहन कर; रुचिराम्—मनोहर; दिव्य—दिव्य; स्त्रक्—माला; गन्ध—तथा सुगन्धि से; मण्डितौ—अलंकृत।

स्नान करने तथा मालिश से उन दोनों की ग्रामीण रास्तों में चलने से उत्पन्न थकान दूर हो गई। इसके बाद उन्हें सुन्दर वस्त्रों से सजाया गया और दिव्य मालाओं तथा सुगन्धित पदार्थों से अलंकृत किया गया।

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्यन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

जननी—अपनी माताओं के द्वारा; उपहृतम्—प्रदत्त; प्राश्य—अच्छी तरह खाकर; स्वादु—स्वादिष्ट; अन्नम्—भोजन; उपलालितौ—लाड़ प्यार किये जाकर; संविश्य—प्रवेश करके; वर—श्रेष्ठ; शय्यायाम्—बिस्तर पर; सुखम्—सुखपूर्वक; सुषुपतुः—दोनों सो गये; व्रजे—व्रज में।

अपनी माताओं द्वारा प्रदत्त स्वादिष्ट भोजन को पेट-भर खाने तथा विविध प्रकार से दुलारे जाने के बाद वे दोनों भाई व्रज में अपने अपने उत्तम बिछौनों पर लेट गये और सुखपूर्वक सो गये।

एवं स भगवान्कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।
ययौ राममृते राजन्कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सः—वह; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; वृन्दावन-चरः—वृन्दावन में विचरण करते हुए; क्वचित्—एक बार; ययौ—गये; रामम् ऋते—बलराम के बिना; राजन्—हे राजा परीक्षित; कालिन्दीम्—यमुना नदी के तट पर; सखिभिः—अपने मित्रों के द्वारा; वृतः—घिरे।

हे राजन्, इस प्रकार भगवान् कृष्ण अपनी लीलाएँ करते हुए वृन्दावन क्षेत्र में विचरण करते थे। एक बार वे अपने मित्रों समेत यमुना नदी के तट पर गये। तब बलराम उनके साथ नहीं थे।

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृष्णार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; गावः—गौवें; च—तथा; गोपाः—ग्वालबाल; च—तथा; निदाघ—ग्रीष्म की; आतप—कड़ी धूप से; पीडिताः—संतप्त; दुष्टम्—प्रदूषित; जलम्—जल को; पपुः—पी लिया; तस्याः—उस नदी का; तृष-आर्ताः—प्यास से पीड़ित; विष—विष से; दूषितम्—दूषित।

उस समय गौवें तथा ग्वालबाल ग्रीष्म की कड़ी धूप से अत्यन्त संतप्त हो उठे। प्यास से व्याकुल होने के कारण उन्होंने यमुना नदी का जल पिया। किन्तु यह जल विष से दूषित था।

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥
वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

विष-अम्भः—विषाक्त जल; तत्—उस; उपस्पृश्य—स्पर्श मात्र से; दैव—भगवान् की योग शक्ति से; उपहत—खो दी; चेतसः—अपनी चेतना; निपेतुः—गिर पड़े; व्यसवः—निर्जीव; सर्वे—सभी; सलिल-अन्ते—जल के किनारे; कुरु-उद्वह—हे कुरुवंशी वीर; वीक्ष्य—देखकर; तान्—उनको; वै—निस्सन्देह; तथा-भूतान्—ऐसी अवस्था में; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; योग-ईश्वर-ईश्वरः—योगेश्वरों के ईश्वर; ईक्षया—अपनी चितवन से; अमृत-वर्षिण्या—अमृत रूपी वर्षा से; स्व-नाथान्—उन्हें ही अपना स्वामी मानने वाले; समजीवयत्—पुनःजिला दिया।

विषैले जल का स्पर्श करते ही सारी गौवें तथा ग्वालबाल भगवान् की दैवी शक्ति से अचेत हो गये और निर्जीव होकर नदी के तट पर गिर पड़े। हे कुरु-वीर, उन्हें इस अवस्था में देखकर, समस्त योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् कृष्ण को अपने उन भक्तों पर दया आ गई जिनका उनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं था। इस तरह उन्होंने अपनी अमृत-चितवन की वृष्टि द्वारा उन्हें तुरन्त पुनः जीवित कर दिया।

ते सम्प्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ।
आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; सम्प्रतीत—पुनः प्राप्त करने पर; स्मृतयः—अपनी स्मृति; समुत्थाय—उठकर; जल-अन्तिकात्—जल के बाहर से; आसन्—हो गये; सु-विस्मिताः—अत्यधिक चकित; सर्वे—सभी; वीक्षमाणाः—देखते हुए; परस्परम्—एक दूसरे को।

अपनी पूर्ण चेतना वापस पाकर सारी गौवें तथा बालक जल के बाहर आकर उठ खड़े हुये और बड़े ही आश्चर्य से एक दूसरे को देखने लगे।

अन्वमंसत तद्राजन्गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अन्वमंसत—अतः उन्होंने सोचा; तत्—वह; राजन्—हे राजा परीक्षित; गोविन्द—गोविन्द की; अनुग्रह-ईक्षितम्—कृपा-दृष्टि के कारण; पीत्वा—पीकर; विषम्—विष; परेतस्य—जीवन से हाथ धो बैठने वालों का; पुनः—फिर से; उत्थानम्—उत्थान, उठ खड़े होना; आत्मनः—अपने से।

हे राजन्, तब उन ग्वालबालों ने सोचा कि यद्यपि वे विषैला जल पीकर सचमुच ही मर चुके थे किन्तु गोविन्द की कृपादृष्टि से ही उनको पुनः जीवनदान मिला है और अपने बल पर उठ खड़े हुए हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''धेनुकासुर का वध'' नामक पन्द्रहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।